मूल-॥ पूर्ति स्वातंत्र्यं च त्यजन् सन् स्वानादत्र्तन् स्वयमादृत्य स्थितस्थलम् ॥सूत्र ४५॥

अर्थ—अर्चावतार भगवान् (पूर्तिम्) अवाप्त समस्त कामत्व रूप पूर्तिको (त्यजन्) छोडता (सन्) हुआ अर्थात् इस चेतनके द्वारा समर्पित वस्तुसे तृप्त होता हुआ (च) और (स्वातंत्र्यम्) स्वरूपादि अपना अधीन होना रूप स्वतंत्रताको छोड़ता हुआ अर्थात् भक्तोंके अधीन स्वरुप और स्थितिको करता हुआ (स्वानादत्र्तन्) अपनेको अनादर करनेवालोंको (स्वयम्) अपनेसे (आद्गत्य) आदरकर (स्थित स्थलम्) स्थित स्थल है। अर्चावतार भगवान् अर्चकोंके अधीन रहते हैं यह लिखा है कि ॥ तदिच्छयामहातेजा भुङ्क्ते वैभक्तवत्सलः । स्नानं पानं तथा यात्रां कुरुते वै जगत्पतिः ॥ स्वतंत्रः सन् जगन्नाथोप्यस्वतंत्रोयथातथा । सर्वशक्तिर्जगद्धाताप्यशक्त इव चेष्टते ॥ अर्चककी इच्छासे महा तेजस्वी भक्तवत्सल भगवान् भोजन करते हैं तथा अर्चककी इच्छासे स्नान पान और यात्राओंको जगत्पति करते हैं। स्वतंत्र होते हुए भी जगन्नाथ परतंत्रकी तरह रहते हैं। सर्वशक्ति होते हुए जगद्धाता असक्तकी तरह रहते हैं ॥ और सौलभ्य होनेसे अर्चावतार सबसे श्रेष्ठ हैं। यह लिखा है कि ॥ एवं पंच प्रकारोऽहमात्मनां पततामधः । पूर्वस्मादपि पूर्वस्माज्ज्यांश्चैवोत्तरोत्तरः । सौलभ्यतो जगत्स्वामी सुलभो ह्युत्तरोत्तरः ॥ अधःपतित चेतनोंके लिये पर व्यूह विभव अन्तर्यामी और अर्चावतार इस भेदसे मैं पांच प्रकारका हूं। पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। जगत्के मालिक सौलभ्य गुणसे उत्तरोत्तर सुलभ होते है ॥ इसीसे कहते हैं कि पूर्ति और स्वातंत्र्यको छोड़ अपनेको अनादन करने वालोंको आप आदर करते हुए स्थितस्थल हैं ॥४५॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी दृष्टान्त द्वारा परव्यूहादिकको दुर्लभ और अर्चावतारको सुलभ कहते हैं।

मूल॥ भूगतजलवदंतर्यामित्वं, आवरणजलवत्परत्वं क्षीरार्णयवद्व्यूहः प्रवहन्नदीवद्विभवः तत्रास्थितो-

करनेका फल (समुद्रतरणम्) समुद्रको पार करना है और (बालस्वामिनः) श्रीलक्ष्मणजीकी (फलम्) प्रपत्ति करनेका फल (रामानुवृत्तिः) श्रीरामानुवृत्ति है। अर्थात् युधिष्ठरादिको प्रपत्तिसे राज्य प्राप्त हुआ है यह महाभारतमें स्पष्ट लिखा है। और द्रौपदीको वस्त्र प्राप्त हुआ है यह लिखा है कि ॥ **आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्यास्तुविशांपते। तद्रूपम परंवस्त्रं प्रादुरासीदनेकशः ॥ महाभा० सभाप० २ अ० ६८ श्लो० ४७॥ नानारागविरागाणि वसनान्यथवै प्रभो। प्रादुर्भवन्ति शतशो धर्मस्य परिपालनात् ॥४८॥** हे राजन् जब दुःशासन द्रौपदीके वस्त्रको खींचने लगा तब उसी रूपके अनेक प्रकारके अन्य वस्त्र उत्पन्न हुए ॥ ४७ ॥ हे प्रभो धर्मके पालन करनेसे सैकड़ों प्रकारके नाना रागविराग वस्त्र निश्चय करके उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ तथा काकको प्राण प्राप्त हुआ है यह लिखा है कि ॥ **दत्त्वा तु दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः ॥ वाल्मीकि रा० सुन्द० कां० ५ स० ३८ श्लो० ३५॥** श्रीरामजीने जयन्त काककी दाहिनी आंखको देकर प्राणोंसे रक्षा की अर्थात् वध नहीं किये ॥ ३५ ॥ और कालीयनागको भी प्राणप्राप्त हुआ है यह लिखा है कि ॥ **प्रतिलब्धेन्द्रिय प्राणः कालियः शनकैर्हरिम्। कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राहकृताञ्जलिः ॥ श्रीमद्भाग० स्क० १० अ० १६ श्लो० ५५ ॥** इन्द्रियों द्वारा प्राणको पाकर क्लेशसे सांस लेता हुआ हाथ जोड़कर दीन कालीयनागने धीरेसे श्रीकृष्ण भगवान्से कहा ॥ ५५ ॥ श्रीगजेन्द्रको कैंकर्य प्राप्त हुआ यह लिखा है कि ॥ **एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभस्तेनापिपार्षदगतिं गमितेनयुक्तः। गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमानकर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥ श्रीमद्भा०स्कं० ८ अ० ४ श्लो० १३ ॥** इस प्रकारसे गरुड़ासन विष्णु भगवान् श्रीगजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ाकरके अपना पार्षद बनाकर उसके साथ गन्धर्व सिद्ध और देवताओंसे गीयमान कर्मवाले नारायण अपने लोकको चले गये ॥ १३॥ और श्रीविभीषणने श्रीरामजीको प्राप्त किया है यह लिखा है कि ॥ **सतुरामस्य धर्मात्मा निपपाति**

विभीषण: ॥ वाल्मी० रा० युद्धकां० ६ स० १६ श्लो०२ ॥ वह धर्मात्मा विभीषण श्रीरामजीके चरणोंमें गिरा अर्थात् श्रीरामजीको प्राप्त किया ॥ १६ ॥ तथा श्रीरामजीने समुद्रको पार किया है यह वाल्मीकि रामायणके युद्धकाण्डके बाइसवें सर्गमें स्पष्ट लिखा है। और श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामानुवृत्ति को प्राप्त किया हैं क्योंकि साक्षात् श्रीरामजी कहते हैं कि ॥ सर्वमायुधमादाय क्षिप्रमावृजलक्ष्मण ॥ वाल्मीकि रा० अयोध्याकां० २ स० ३१ श्लो० ३१॥ हे लक्ष्मण सब आयुधोंको लेकर शीघ्र तुम आवो ॥३१॥ इससे साबित होता है कि श्रीलक्ष्मणजीने रामानुवृत्ति प्राप्त की है। इस उनतालिसवें सूत्रमें जो प्रपत्तिका फल कहा गया है वह उपलक्षणमात्र है। इससे जो जो जिस जिस कामके लिये प्रपत्ति किया है सो सो उस उस कामको प्राप्त किया है। अतः प्रपत्तिके फलके नियमका अभाव है। इससे कहते हैं कि ॥धर्मपुत्रादिकोंका फल राज्य द्रौपदीका फल वस्त्र काक और कालीयका फल प्राण श्रीगजेन्द्रका फल कैंकर्य श्रीविभीषणका फल श्रीरामजीकी प्राप्ति श्रीरामजीका फल समुद्रतरण और श्रीलक्ष्मणजीका फल रामानुवृत्ति है ॥ ३९ ॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी विषय निमयको कहते हैं कि।

मू० ॥ विषयनियमो नाम गुणपूर्तिमत एवविषयत्वम् ॥ सूत्र ४०॥

अर्थ (विषयनियमः) विषय नियम (नाम) माने (गुणपुर्तिमतः) पर व्यूह पांचोंमें सौलभ्यार्दि आदि गुण पूर्तिवाले (एव) ही निश्चय करके (विषयत्वम्) विषय हैं। इसीसे कहते हैं कि ॥ विषय नियम माने गुणपूर्तिमान ही विषय है ॥ ४० ॥

अब जगदाचार्यजी यह कहते हैं कि पर व्यूह आदिक पांचोमें गुणोंकी पूर्ति किसमें है।

मूल-॥ गुणपूर्तिरर्चावतारे ॥सूत्र ४१॥

अर्थ—(गुण पूर्तिः) सौलभ्यादिक गुणोंकी पूर्ति (अर्चावतारे] अंर्चावतारमें है। इसमें प्रमाण यह लिखा है कि ॥ अर्चावतारविषये मयाप्युद्देश-

नहीं होता है। इस प्रकारके छठवें प्रश्नका उत्तर होने पर तो अन्तिम सातवां प्रश्न होता है कि एक ही समयमें ईश्वरके आठ-आठ अवतार इतना अन्धेर। इस प्रश्न का यह उत्तर है कि जैसे एक अग्निने करोड़ों रूप धारण किये और वे छोटे बड़े सब प्रकारके किये तो भी एक रूपने दूसरे रूपको नहीं रोका और करोड़ों रूप धारण करने पर कोई दोष नहीं आया वैसे ही ईश्वर भी एक ही समयमें अनेक रूप धारण करते हैं तो भी कोई दोष नहीं है। इन युक्तियोंसे भी ईश्वरका अव-तार साबित होता है। ग्रन्थके विस्तारके भयसे अधिक मैं नहीं लिखता हूं इस विषयमें जिसको अधिक जानना हो वह मेरी बनायी हुई जो "अर्थपंचक" ग्रन्थ की टीका 'मर्म बोधिनी" है उसको देख ले॥ इस प्रकारसे ईश्वरका अवतार सिद्ध होने पर तो इस सूत्रमें कथित अर्चावतारके वैभवको नहीं सहनेवाले हुज्जत बाज लोग यह कहते हैं कि मूर्ति पूजा जैनियोंसे चली है इससे वैदिक मतवालों को मूर्तिपूजा नहीं करना चाहिये। इसका उत्तर यह है कि मूर्तिपूजा अनादि कालसे चली आती है क्योंकि मूर्तिपूजाके विषयमें वेदोंमें प्रमाण लिखा है कि॥ **सहस्त्रस्य प्रतिमा असि॥ यजु० अ० १५ मं० ६५॥** हे परमेश्वर आप हजारोंकी मूर्ति हैं॥ ६५॥ **मा असिप्रमाअसि प्रतिमा असि॥ तैत्तिरी० प्रपाठक० ४ अनु वा० ५॥** हे महावीर स्वामी तुम ईश्वरकी मूर्ति हो॥ ५॥ **संवत्सरस्य प्रतिमायांत्वारात्र्युपास्महे। सा न आयुष्मतीं प्रजा राय स्पोषेण संसृज॥ अथर्व० कां० ३ स० १० मं० ३॥** हे ईश्वर देव आप संवत्सरकी मूर्ति हो तिस मूर्तिमें तुझको हम उपासना करते हैं। वह तुम आयुवाली प्रजाको धन पुष्टि सहित हो। **द्वेवावब्रह्मणोरूपे मूर्तं चैवामूर्तं च॥ बृहदा० अ० २ ब्रा० ३ कं० १॥** ब्रह्माका रूप दो है एक मूर्ति और दूसरा अमूर्ति है॥ १॥ **सऐक्षत प्रजापतिः इमंवा आत्मनः प्रतिमामसृक्षि- यत्संवत्सर मितितस्मादाहुः प्रजापतिः संवत्सर इत्यात्मनोह्येतं प्रतिमाम सृजत यद्वेव चतुरक्षरः संवत्सरश्च तुरक्षरः प्रजापतिस्तेनो हैवास्येषप्रतिमा॥ शत० ११।१।६।१३॥** ईश्वरने अपनी प्रतिमा

है। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वैदिक प्रमाण ईश्वरके औतारके विषयमें बहुतसे हैं उन्हींमेंसे कुछ प्रमाणोंको मैं नीचे लिखता हूं कृपा करके सज्जन अवलोकन करें ॥रूपंरूपंप्रतिरूपो बभूव तदस्यरूपंप्रतिचक्षणाय । इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयतेयुक्ता ह्यस्यहरयः शतादश ॥ ऋग्वे० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८॥ परमेश्वर अपने अनन्त सामर्थ्योंसे अनेक रूपवाला होता है सो इस अपने रूपको सब भक्तोंपर विख्यात करनेके लिये जैसे-जैसे रूपकी इच्छा हो तैसा तैसा हुआ। निश्चय इस परमेश्वरके रूप सैकड़ों हैं। तिसमें दश अवतार मुख्य हैं इस मन्त्रमें जो इन्द्र शब्द है सो ॥ इन्द्रमिन्त्र० मं० १ सू० १६ मं ४६ के अनुसार ईश्वरवाचक है ॥ १८ ॥ प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधाविजायते तस्ययोनिं परिपश्यन्तिधीरास्तस्मिन्हतस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ यजु० अ ३१ मं० १९॥ प्रजापति ईश्वर गर्भमें आता है। अजन्मा होकर भी वह बहुत प्रकारसे जन्म धारण करता है। उसके शरीरको धीर भक्त पुरुष देखते हैं। वह कौन ईश्वर है जिसमें ये समस्त ब्रह्माण्ड ठहरे हैं ॥ १९ ॥ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं-बृहत् ॥ यजु० अ० १० मं० २४॥ वह भगवान् हंस अहंकारहारी आदित्य आदि रूपसे दीप्तिमें रहनेवाले मनुष्योंके प्रवर्तक वायुरूपसे आकाशमें रहनेवाले देवताओंके आह्वान करनेवाले अग्निरूपसे वेदिमें बैठनेवाले रामकृष्ण रूपसे मनुष्योंमें होनेवाले श्रेष्ठ स्थान क्षेत्र आदिमें बैठनेवाले सत्यमें स्थित होनेवाले मंडलरूपसे आकाशमें स्थित होनेवाले मत्स्य कच्छपरूपसे जलमें होनेवाले अनेकरूपसे पृथ्वीमें होनेवाले सत्यमें होनेवाले पत्थरमें मूर्तिरूपसे होनेवाले मेघमें जलरूपसे होनेवाले महान् परब्रह्म रूप हैं ॥ २४ ॥ प्रतद्विष्णुःस्तवते वीर्येण मृगोनभीमः कुचरोगिरिष्ठाः यस्योरुषुत्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५४ मं० २॥ मृगके समान सो विष्णु भगवान् अपने पराक्रमसे स्तुतिको प्राप्त होते हैं। नृसिंहरूपसे भीम मत्स्यादिरूपसे पृथ्वीको खानेवाले और वराहादिरूपसे

देशमें गोबरसे लिपकर वहां पर श्रीमन्नारायणकी मूर्ति बना करके अखण्डित पुष्पोंसे उसकी पूजा करे ॥ २ ॥ **देवीद्या वा पृथिवी मखस्य वा मद्य शिरोराध्यासं देवयजने पृथिव्यामखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे ॥ यजु० अ० ३७ मं० ३॥** हे मृज्जलरूप देवियो अब देव यजन स्थानमें तुम दोनोंको लेकर महावीरकी मूर्तिको बनाऊंगा इससे यज्ञके लिये ग्रहण करता हूं और महावीरकी मूर्ति बनानेके लिये तुम्हें ग्रहण करता हूं ॥३॥ **अथ मृत्पिण्डमुपादाय महावीरं करोति ॥ शत० १४।१।२।१७॥** मिट्टीके पिण्डको लेकर महावीरकी मूर्तिको बनाता है ॥ १७ ॥ **एह्यश्यमान मातिष्ठाऽश्मा भवतुते तनुः कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टेशरदःशतम् ॥ अथर्व० कां० २ सू० १३ मं० ४॥** हे भगवन् पत्थरकी मूर्तिमें विराजमान हो जाइये। पत्थरकी मूर्ति आपका शरीर हो। सब देवता आपके शरीर की आयु अनन्त वर्षोंकी करें॥ ४ ॥ **अश्मवर्ममेऽसियोमा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् ॥ अथर्व० कां० ५ अ० १० मं० १७॥** हे भगवन् तुम मूर्ति व्यापक परमेश्वर मेरे कवच हो जो पापी पुरुष पूर्व दिशाका मुझे मारे वह इस वधको प्राप्त करे ॥ १७ ॥ **नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि ॥ अथर्व० कां० १ अ० ३ मं० १॥** मैं बिजलीरूप ब्रह्मको प्रणाम करता हूं। मैं गर्जनारूप ब्रह्मको प्रणाम करता हूं। मैं पाषाणरूप ब्रह्मको प्रणाम करता हूं जिस पाषाणसे चोट लगती है ॥ १ ॥ ऐसे हजारों मन्त्र मूर्तिपूजामें प्रमाण हैं। इससे जो लोग यह कहते हैं कि जैनियोंसे मूर्तिपूजा चली है उन्होंने मालूम होता है कि कभी वेदका अवलोकन नहीं किया है। और वेदांग व्याकरणमें महर्षि पाणिनिने कहा है कि ॥ **जीविकार्थे चापण्ये ॥ व्या० अ० ५ पा० ३ सू० ९९ ॥** जो मूर्ति जीविकाके लिये हो वेंची न जाय उसमें कन् प्रत्ययका लोप हो ॥ और व्याकरणके पांचवें अध्याय तीसरे पाद निनानवे सूत्रमें महर्षि पतञ्जलि कनका लोप विधान करके (वासुदेवः) (शिवः) (स्कन्दः) यह उदाहरण देते हैं।

और जो बेंचनेके लिये मूर्ति होगी वहां (शिवकः) ऐसा प्रयोग होता है। इस विषयमें यह कारिका भी है कि ॥ **अर्चासु पूजनार्हासु चित्रकर्म ध्वजेषुच। इवेप्रतिकृतौलोपः कनोदेव पथादिषु** ॥ अर्थात् पूजा करने योग्य मूर्तियोंमें ॥ **इवे प्रतिकृतौ** ॥ **व्याक० अ० ५ पा० ३ सू० ९६** ॥ इस सूत्रसे विहित कन् प्रत्ययका ॥ **जीविकार्थे चापण्ये** ॥ **५।३।९९** ॥ इस सूत्रसे लोप होता है तो (वासुदेवः) यह प्रयोग सिद्ध होता है। जबकि मूर्तिपूजा न होती तो सूत्रकार पूर्वोक्त लोप करनेवाला सूत्र कैसे बनाते। इस प्रकार वैदिक प्रमाणोंसे मूर्तिपूजाके सिद्ध होनेपर तो यह प्रश्न होता है कि मूर्तिपूजाका निषेध यजुर्वेदमें लिखा है कि ॥**अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽसंभूति मुपासते। ततोभूय इवते तमो यउसंभूत्यांरताः** ॥ **यजु० अ० ४० मं० ९** ॥ जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारणका ब्रह्मके स्थानमें उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान दुःखसागरमें डूबते हैं और संभूति जो कारणसे उत्पन्न हुए कार्य रूप पृथ्वी पाषाण और वृक्षादि तथा मनुष्यादिके शरीरकी उपासना करेते हैं वे उस अन्धकारसे भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरकमें गिरके महा क्लेश भोगते हैं ॥ ९ ॥ इससे मूर्तिपूजो नहीं करनी चाहिये। इसका उत्तर यह है कि यह जो अर्थ किया गया है सो ठीक नहीं है। इस मन्त्रका यह अर्थ है कि जो मनुष्य अपने शरीरकी उपासना करता है अर्थात् शरीरसे भिन्नको आत्मा नहीं ऐसा जानकर ॥ **ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत** ॥ इस चार्वाक् के सिद्धान्तको ग्रहण करता है वह पुरुष नरकको जाता है। इस आधे मन्त्रसे चार्वाक् मन्त्रका खण्डन किया गया है। और उत्तरार्द्धका अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य कार्य-कारण सब जगत्को ईश्वर मानकर कर्मकाण्डका लोप कर देता है वह उससे भी अधिक मूर्खताको प्राप्त होता है। इस उत्तरार्द्धसे कर्मत्याग करनेवाले मायावादियोंके मतका खण्डन है। इस मन्त्रमें असंभूतिका अर्थ शरीर है और संभूतिका अर्थ ब्रह्म है। इसमें प्रमाण वेद ही है कि॥ **संभूतिं च विनाशंच यस्तद्वेदोभयंसह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते** ॥ **यजु० अ० ४० मं० ११** ॥ जो योगी संभूति ब्रह्म और विनाश शरीर इन दोनोंको मिले हुये शरीरमें जानता है

प्रकारका (उक्तिः) कथन किया गया है । इसका आशय यह है कि अज्ञानियों में ज्ञान तथा भक्ति दोनों मालूम हो ज्ञान ही अधिक हो और भक्तिपरवशोंमें अत्यल्प तथा ज्ञानपूर्ण होने पर भी भक्ति अत्यन्त अधिक है । अर्थात् सर्वत्र सबके रहने पर भी जो अधिक रहता है उसीसे व्यवहार होता है । इसीसे कहते हैं कि इस प्रकारके कहनेका कारण अधिकता है ॥ ५१ ॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी यह कहते हैं कि अज्ञान मायाको अवलम्बन करके होता है तथा ज्ञान जीवको अवलम्बन करके होता है और भक्ति ब्रह्मको अवलम्बन करके होती है ।

मू० ॥ एतत त्रयं च तत्वत्रयमवलंब्यागच्छति ॥सूत्र ५२॥

अर्थ—(एतत्) ये अज्ञान तथा ज्ञान और भक्ति (त्रयम्) तीनों (च) भी (तत्वत्रयम्) तीन तत्वोंको (अवलंब्य) अवलंबनकर (आगच्छति) प्राप्त होते है । अर्थात् अज्ञान अचित्संबंधको अवलम्बन कर होता है तथा ज्ञानाधिक्य चिततत्वको अवलम्बन होता है और भक्ति परवशता ईश्वर तत्वको अवलम्बनकर होती हैं । इसीसे कहते हैं कि ॥ ये तीनों तीन तत्वोंको अवलम्बन कर होते हैं ॥ ५२॥

अब श्रीवचनभूषणकार यह कहते हैं कि एक अधिकारीमें ये तीनों कहांपर देख सकते हैं ।

मूल ॥ "किमहंकुर्याम्" इत्यत्रैतत् त्रयमप्यस्ति ॥ सूत्र ५३॥

अर्थ (किम्) क्या (अहम्) हम (कुर्याम्) कर सकते हैं (इति) ऐसा अनुसंधान करनेवाले (अत्र) श्रीशठकोपसूरिमें (एतत्) ये अज्ञान तथा ज्ञानाधिक्य और भक्तिपरवशता (त्रयम्) तीनों (अपि) भी (अस्ति) हैं । इसीसे कहते हैं कि ॥ क्या हम कर सकते हैं इस स्थलमें तीनों हैं ॥ ५३ ॥

अब जगदाचार्यजी यह कहते हैं कि तब क्या अज्ञान तथा ज्ञानाधिक्य और भक्तिपरवशता ये तीनों श्रीशठकोपसूरिकी प्रपत्ति करनेका कारण होता है ।

मूल ॥ तत्रैकमवलंब्य वर्तते ॥सूत्र ५४॥

अर्थ—(तत्र) श्रीशठकोपसूरिमें प्रपत्ति (एकम्) एकको अर्थात् अज्ञाना-शक्ति तथा ज्ञानाधिक्य और भक्ति परवशता इन तीनोंमें मुख्यतया एक भक्ति परवशताको (अवलंब्य) अवलंबन करके (वर्तते) रहती है। इसीसे कहते हैं कि ॥ वहांपर एकको अवलंबन कर रहती है ॥ ५४ ॥

अब प्रबन्धकर्ता यह कहते हैं कि अज्ञानशक्ति तथा ज्ञानाधिक्य और भक्ति परवशता इन तीनों हेतुओंसे होनेवाली प्रपत्तियोंमें मुख्य कौन है।

मूल-॥ मुख्या सैव ॥ सू० ५५॥

अर्थ—(मुख्या) मुख्य प्रपत्ति (सा) वही (एव) है। निश्चय करके जो प्रपत्ति भक्तिपरवशता द्वारा प्राप्त होती है । क्योंकि भक्तिपरवशता द्वारा प्रपत्ति करनेसे प्राप्य वस्तुमें सर्वदा तेलकी धारके समान अविछिन्न प्रेम बना रहता है। इसीसे कहते हैं कि मुख्य वही है ॥ ५५ ॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी प्रपत्तिके अधिकारी जो तीन प्रकारके हैं उसमें प्रमाण कहते हैं।

मूल-॥ "अविद्यातः" इतिश्लोके एतत्त्रयमप्युक्तम् ॥सूत्र ५६॥

अर्थ—(अविद्यातः) अज्ञानसे (इति) इस (श्लोके) पराशर भट्टाचार्यके बनायें हुये श्लोकमें (एतत्) ये (त्रयम्) तीनों (अपि) भी (उक्तम्) कहे गये हैं। अर्थात् "अविद्यात्:" यह पद जो छप्पनवें सूत्रमें है सो पराशर भट्टाचार्य स्वामीजीके बनाये हुए श्लोकका प्रतीक है। यह श्लोक जितंतेव्याख्यानके उपोद्घातमें कहा गयाहै कि ॥ **अविद्यातो देवे परिबृढतया वा विदितया स्वभक्त भूम्ना वा जगति गतिमन्या मविदुषाम्। गतिर्गम्यश्चासौ हरिरिति जितंताह्वयमनो रहस्यं व्याजह्रे सखलु भगवान् शौनक मुनिः ॥** अज्ञ अधिकारी अज्ञानसे परमात्माकी प्रपत्ति करते हैं। तथा सर्वज्ञ अधिकारी ज्ञानाधिक्यसे परमात्माकी प्रपत्ति करते हैं। और भक्तिपरवश

वह शरीरसे मृत्युको जीतकर ब्रह्मज्ञानसे मोक्षको पाता है ॥ ११ ॥ इस प्रकार जब वेद मन्त्र ही असंभूतिका अर्थ शरीर और संभूतिका अर्थ ब्रह्म करता है तो फिर वेदसे विरुद्ध असंभूतिका अर्थ प्रकृति और संभूतिका अर्थ प्रकृतिके कार्य कोई भी विचारशील पुरुष किसी प्रकारसे नहीं मान सकता है। इससे मूर्तिपूजापर वैदिक मत है। इस प्रकारके यजुर्वेदके चालिसवें अध्यायके नौवें मन्त्रका अर्थ निश्चय होनेपर तो दूसरा प्रश्न होता है कि यजुर्वेदमें लिखा है कि ॥ न तस्यप्रतिमा अस्ति ॥ यजु० अ० ३४ मं० ४५ उस परमात्माकी मूर्ति नहीं है ॥ ४३ ॥ इस प्रश्नका उत्तर यह है कि यहां पर प्रतिमा शब्दका मूर्ति अर्थ नहीं क्योंकि उसी मन्त्रमें तीन प्रतीक है जिससे परमेश्वर की मूर्ति सिद्ध होती है। इससे हम पहले संपूर्ण मन्त्रको लिखते हैं और फिर समस्त अर्थका विवेचन आगे लिखेंगे। मन्त्र इस प्रकार है ॥ न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्य गर्भ इत्येषः मामाहिंसी दित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥ यजु० अ० ३२ मं० ३॥ उस परमात्माकी तुल्यता नहीं है। जिस परमात्माका नाम महान् है तथा महत् यशवाला हैं जो "हिरण्यगर्भः" इस मन्त्रमें वर्णित हुआ है। और जिस परमात्माको वर्णन 'मामाहिंसीत्" यह मन्त्र कर रहा है। तथा जो "यस्मान्न जातः" इस मन्त्रमें कहा गया है ॥ ३ ॥ इस मन्त्रके उत्तरार्द्धमें तीन मन्त्रोंका प्रतीक है। उन तीनमें ईश्वर कैसा कहा गया है इसको देखिये ॥ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥ यजुः० अ० १३ मं० ४॥ हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे जो प्रजापति स्थित है वह हिरण्यगर्भ कहलाता है। वह प्रजापति सब प्राणी जातिकी उत्पत्तिसे प्रथम स्वयं ब्रह्माण्ड शरीरी हुआ और उत्पन्न होनेवालें जगतका स्वामी हुआ। उस प्रजापतिने अन्तरिक्ष द्युलोक और भूमिको धारण किया है। उस प्रजापतिकी हम हविष्यसे परिचर्या करते है ॥ मामाहिंसीज्जनितायः पृथिव्यायोवादिवं सत्यधर्माव्यानट्। यश्चापश्चन्द्राः प्रथमोजजान कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥ यजु० अ० १२ मं० १०२॥ जो प्रजापति पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला जो सत्य धारण

अधिकारी अपनी भक्तिकी अधिकतासे परमात्माकी प्रपत्ति करते हैं। ये तीनों अधिकारी जगत्में और कोई उपाय नहीं जानते हैं। इन तीनोंको भगवान् ही उपाय और उपेय हैं। ऐसा जितंते नामक मंत्रके रहस्यको निश्चय करके उस शौनक मुनिने व्याख्यान किया है॥ इसीसे कहते हैं कि॥ अविद्यातः इस श्लोकमें ये तीनों भी कहे गये हैं॥ ५६॥

अब श्रीवचनभूषणकार इन तीनों अधिकारियोंके विषयमें अखिल जगज्जननी, आप्ततमा महालक्ष्मीजीसे लक्ष्मीतन्त्रमें कहे हुए वचनको कहते हैं कि।

मूल॥ इदं शरणमज्ञानाम्॥ सूत्र ५७॥

अर्थ—(इदम) यह प्रपत्ति (अज्ञानाम्) अज्ञ अधिकारियोंका (शरणम्) शरण अर्थात् उपाय है। इस सूत्रमें जो इदं शरणमज्ञानाम्। यह पद है सो लक्ष्मीतन्त्रके श्लोकका प्रतीक है। यह श्लोक महालक्ष्मी देवीजीने कहा है कि॥ **इदं शरणमज्ञनामिदमेव विजानताम्। इदं तितीर्षतांपार मिदमानन्त्यमिच्छताम्॥** यह प्रपत्ति अज्ञ अधिकारियोंका उपाय है तथा यह प्रपत्ति ज्ञानी अधिकारियोंका भी उपाय है और यह प्रपत्ति संसार सागर के पार होने की इच्छावाले जो भगवदनुभव में त्वरावाले भक्ति परवश अधिकारो हैं उनका भी उपाय है। इससे साबित होता है कि तीन प्रकारके अधिकारी होते हैं। इस सन्तावनवें सूत्रमें 'इदम्' इस पदसे सन्निकृष्टवर्ति प्रपत्तिका ही बोध होता है क्योंकि लिखा है कि॥ **इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्त्ति चैतदोरूपम्। अदसस्तु विप्रकृष्टेत दितिपरोक्षेविजा नीयात्॥** सन्निकृष्टमें इंदम् शब्दका प्रयोग होता है और अत्यन्त समीपमें एतद् शब्दको प्रयोग होता है तथा विप्रकृष्ट में अदस् शब्दका प्रयोग होता है और परोक्षमें तद शब्दका प्रयोग होता है॥ इस सूत्रका (इदम्) इस पदमें॥ **व्यत्ययो बहुलम्॥ व्या० अ० ३ पा० १. सू० ८५॥** इस सूत्रसे लिंगकाव्यत्य है। इसीसे कहते हैं कि॥ यह अज्ञोंका शरण है॥ ५७॥

अब जगदाचार्यजी यह कहते हैं भक्तिके अवस्था भेद होनेपर प्रपत्ति नष्ट हो जाती है।

होती है। इस प्रकारके दूसरे प्रश्नका उत्तर होनेपर तो तीसरा प्रश्न होता है कि। मूर्तिके पूजनेसे ईश्वरकी प्रसन्नता कैसे होगी। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि जैसे शरीरके पूजनेसे शरीरव्यापक आत्मा प्रसन्न होता है वैसे ही मूर्तिके पूजनेसे मूर्तिमें व्यापक नारायण भगवान् प्रसन्न होते हैं। इस प्रकारके तीसरे प्रश्नका उत्तर होनेपर तो चौथा प्रश्न होता है कि। निराकार ईश्वरकी मूर्ति कैसे बनेगी। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि। जैसे जिसका कुछ भी आकार नहीं ऐसा जो अभाव है उसकी मूर्ति शून्य बन जाती है वैसे ही सर्व स्वरूप जो ईश्वर है उनकी मूर्ति बन जाती है। इस प्रकारके चौथे प्रश्नका उत्तर होनेपर पांचवां प्रश्न होता है कि। मूर्तिके टूटनेसे ईश्वर नष्ट हो जायगा। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि। जैसे शरीरके नाश होनेपर शरीरमें रहनेवाले जीवका नाश नहीं होता है और अन्न आदिके नाश होनेपर अन्नादिमें व्यापक ईश्वरका नाश नहीं होता है वैसे ही मूर्तिके टूटने पर भी मूर्तिमें व्यापक ईश्वरका नाश नहीं होता है।

इस प्रकारके पांचवें प्रश्नका उत्तर होनेपर तो छठवां प्रश्न होता है कि। नकली मूर्तिके पूजनसे असली ईश्वरका ज्ञान कैसे होगा। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि। जैसे लड़कोंको नकशेमें जो नकली हिमालय गंगा समुद्र जंगल आदि हैं उनके ज्ञानसे असली हिमालय गंगा समुद्र जंगल आदिका ज्ञान हो जाता है वैसे ही भक्तोंको नकली मूर्तिके पूजनसे असली ईश्वरका ज्ञान हो जाता है। इस प्रकारके छठवें प्रश्नका उत्तर होने पर तो सातवां प्रश्न होता है कि। मूर्तिके पूजन करनेसे ईश्वर कैसे प्रसन्न हो जायेगा। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि। जिस प्रकार असंख्य पदार्थ-द्रव्यके स्वामी जिसके यहां किसी प्रकारकी कमी नहीं है उसको केवल प्रसन्नार्थ अनेक राजा भेंट देते हैं और वह प्रसन्न होता है इसी प्रकार परिपूर्ण ईश्वरको भक्तजन सब पदार्थ अर्पण कर देते हैं और वह परमेश्वर प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकारके सातवें प्रश्नका उत्तर होने पर तो आठवां प्रश्न होता है कि। ईश्वर तो अखण्ड है। अखण्डकी मूर्ति कैसे बनेगी। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि। जैसे अखण्डकालके सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग ये चार स्थूल खण्ड बनाये गये इसके बाद वर्ष अयन ऋतु मास पक्ष ये माध्यमिक खंड बनाये गये फिर दिन रात पहर घड़ी आदि खंड बनाकर अखंड कालकी भव्य मूर्तिवाली घड़ी बनती है वैसे ही ईश्वरकी असंख्य मूर्तियां बनती हैं और ईश्वरमें कोई विकार नहीं आता है। इस प्रकार आठवें प्रश्न

बाधक गुणवाले। यहां पर बाधकतया भान होता है और (अपि) भी (श्रीशरेषु) मारनेवाले बाणोंमें (अपि) भी जैसे ॥ **शरेषु व्यापृत शीतल कमल सदृश नेत्र विशिष्टं बिना मम हृदयं साभिलाषं नतिष्ठति ॥** बाणोंको प्रयोग करनेवाले शीतल कमल नयनके बिना मेरा मन झुकता नहीं है। यहां पर धारकतया भान होता है और ॥ **शराण्येव क्रूरतयाहिंसन्ति ॥** बाण ही क्रूर हो पीड़ा करते हैं। यहां पर बाधकतया भान होता है और (श्रीनामसु) भगवतके नामोंमें (अपि) भी जैसे ॥ **श्रियः पतिं गायन्ति श्रुत्वा भव्यंशुकमंजलिंकृत्वानमश्चकार** ॥ श्रीमन्नारायणके नामको गाने पर सुन भव्यने शुगाको हाथ जोड़ प्रणाम किया। यहां पर धारकतया भान होता है और ॥ **कृष्णस्य नामान्येवाक्रमेणोक्त्वा हिंसथ ॥** श्रीकृष्णके नामोंको ही कहकर मार दिये हो। यहां पर बाधकतया भान होता है (च) और (वेणुनादे) वेणुके शब्दमें भी जैसे ॥ **अस्मदर्थमेवैकस्मिन् दिवसे वादयितुं तव वेणोर्मधुरस्वरोनागच्छति।** हमारे लिये ही एक दिन आ बजानेको तुम्हारे वेणुको स्वर नहीं आता है। यहां पर धारकतया भान होता है। और ॥ **तस्य मधुर स्वरोवेणुर्हिनस्ति ॥** उसका मधुर स्वर वेणु मारता है। यहां पर बाधकतया भान होता है इन पूर्वोक्त स्थलोंमें (द्रष्टुम्) देखनेके लिये (योग्यौ) योग्य है। इसीसे कहते हैं कि ॥ ये स्वभाव विशेष कल्याण गुण बाण श्रीनाम और वेणुगानमें भी देखते हैं ॥६० ॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी इस प्रपत्तिको उपाय मानने पर होनेवाले दोषको कहते हैं कि।

का उत्तर होनेपर तो नौवां प्रश्न होता है कि। मूर्तिमें ईश्वरकी भावना कैसी। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि। प्रभु सर्व व्यापक हैं इससे सर्वत्र रहते हैं अतः मूर्तिमें ईश्वरकी भावना सच्ची है। इस प्रकार नौवें प्रश्नका उत्तर होने पर तो दशवां प्रश्न होता है कि। जो मूर्तियां औरंगजेबका अनिष्ट नहीं कर सकीं वे हमारी क्या सहायता करेंगी। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि। जैसे विकाशवाद वाले निराकार ईश्वरका खण्डन करते हैं परन्तु निराकार ईश्वर विकाशवादियों को मारता नहीं है तो भी निराकार माना जाता है वैसे ही यदि औरंगजेबने मूर्तिका अपमान कर दिया और मूर्तिने उसका अनिष्ट नहीं किया तो भी मूर्तिपूजा अवश्य करनी चाहिये। इस प्रकारके दशवें प्रश्नका उत्तर होने पर तो ग्यारहवां अन्तिम प्रश्न होता है कि हमने मूर्ति पूजासे किसीको भी लाभ होते नहीं देखा। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि तुम्हारा ज्ञान नेत्र फूट गया है इससे तुमको नहीं दिखाई पड़ता है परन्तु इतिहास साक्षी हैं कि मूर्तिपूजा करनेसे उद्धव ध्रुव प्रह्लाद नारद अम्बरीष मुचकुन्द मार्कण्डेय आदि अनेक भक्तोंका कल्याण हुआ है। इससे वैदिक मतवालोंको अवश्य मूर्तिपूजा करनी चाहिये। ग्रन्थके विस्तारके भयसे मैं अधिक नहीं लिखता हूं जिसको अधिक जानना हो वह मेरी बनायी हुई "वैदिकमूर्तिपूजादर्श" नामकी पुस्तक है उसको देख ले। मूर्तिपूजा परम वैदिक और सर्व दुर्लभ है। इसीसे श्रीवचनभूषणकार कहते हैं कि ॥ "तत्रस्थितो ह्रदइवाचावतारः" ॥ वहांपर स्थित ह्रदके समान अर्चावतार भगवान् हैं ॥ ४६ ॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी यह कहते हैं कि यह अर्चावतार विषयी जीवोंकी रुचिको उत्पन्न करके भोग्य भी होते हैं।

मूल॥ अयं च शास्त्रैर्वशीकरणयोग्यानां विषयान्तरेषु निमज्य विमुखानां चेतनानां वैमुख्यं दूरीकृत्य रुचिमुत्पादयति रुच्युत्पत्तावुपायोभवति उपाय परिग्रहेकृते भोग्यो भवति ॥ सूत्र ४७॥

अर्थ—(अयम्) यह सौलभ्यादि गुण विशिष्ट अर्चावतार (शास्त्रैः) हिता उपदेश करनेवाले श्रुति इतिहास पुराणादि शास्त्रोंसे (वशीकरण योग्यानाम्)

मूल-॥ अज्ञानेन प्रपन्ना अस्मदादयो ज्ञानाधिक्येन प्रपन्नाः पूर्वाचार्या भक्तिपारवश्येन प्रपन्ना दिव्य-सूरयः ॥सूत्र ५०॥

अर्थ—(अज्ञानेन) इतरोपायानुष्ठान करनेके लिये ज्ञानादि न होनेसे अज्ञान करके (प्रपन्नाः) प्रपत्ति करनेवाले (अस्मदादयः) हम सब हैं और (ज्ञानाधिक्येन) उपायान्तर स्वरूप नाशक हैं ऐसा समझ यथार्थ स्वरूपके दर्शनसे होनेवाली ज्ञानपूर्ति अर्थात् ज्ञानाधिक्यसे (प्रपन्नाः) प्रपत्ति करनेवाले (पूर्वाचार्याः) पूर्वाचार्य अर्थात् नाथ मुनि स्वामी तथा पद्माक्ष स्वामी और राम-मिश्र स्वामी तथा यामुनाचार्य स्वामी और महापूर्ण स्वामी तथा यतिवर रामा-नुजाचार्य स्वामीजी प्रभृति हैं और (भक्तिपारवश्येन) नवधा भक्तिकी पराधी-नतासे (प्रपन्नाः) प्रपत्ति करनेवाले (दिव्यसूरयः) दिव्यसूरिगण श्रीशठको-प सूरि प्रभृति हैं। अब यहां पर यह संदेह होता है कि नवधा भक्ति कौन कौन है। इसका उत्तर श्रीमद्भागवतके सातवें स्कन्धमें लिखा है कि॥

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥ श्रीमद्भागवत स्कं० ७ अ० ५ श्लो० २३॥ श्रीविष्णुभगवानकी कथा कानोंसे सुनना १ तथा विष्णुके नामों को जीभसे कहना २ और मनसे विष्णुके दिव्य विग्रहको स्मरण करना तथा श्री पादतीर्थका सेवन करना ४ और विष्णुकी प्रतिमाको पूजना ५ और साष्टांग तथा स्तुति करना ६ तथा विष्णुकी दासता करना ७ और विष्णुकी मित्रता करना ८ तथा विष्णुमें आत्मसर्वस्वका निवेदन करना ९ यही नवधा भक्ति है॥ २३॥ इसीसे कहते हैं कि अज्ञानसे प्रपन्न अस्मदादिक ज्ञानाधिक्य से प्रपन्न पूर्वाचार्य भक्ति परवशतासे प्रपन्न दिव्य सूरि गण॥ ५०॥

अब जगदाचार्यजी यह कहते हैं कि अज्ञानादिकोंमें एक एक ही को प्रपत्ति करनेमें कारण अधिकताको लेकर है।

मूल॥ एव मुक्तिराधिक्यमपेक्ष्य ॥सूत्र ५१॥

अर्थ—(आधिक्यम्) अधिकताकी (अपेक्ष्य) अपेक्षा करके (एवम्) इस

करनेवाला द्युलोकको बनाकर व्याप्त है और जो आदि पुरुष प्रथम शरीर संसार का अह्लाद और तृप्ति साधक जलको उत्पन्न करता हुआ मनुष्योंका रचने वाला है वह प्रजापति हमें मत मारे उस प्रजापतिके निमित्त हम हविष्य देते हैं ॥ १०२ ॥ यस्मान्नजातः परो अन्यो अस्तिय आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया संरराण स्त्रीणि ज्योतींषि सचते सषोडशी ॥ यजु० अ० ८ मं० ३६॥ जिस पुरुषको दूसरा कोई उत्कृष्ट नहीं उत्पन्न हुआ है जो संपूर्ण लोकोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट है वह सोलह कलात्मक सब भूतोंका आश्रय जगतका स्वामी प्रजारूपसे सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापालनके निमित्त अग्नि वायु सूर्य लक्षणवाली तीन ज्योतियोंको अपने तेजसे उज्जीवन करता है ॥ ३६ ॥ यहां पर "हिरण्यगर्भः" इस मन्त्रमें ईश्वरको शरीरी मूर्तिमान बतलाया है। और "मामाहिंसीत्" इस मन्त्रमें ईश्वर को संसारकी मूर्तियोंमें व्यापक बतलाकर मूर्तिमान सिद्ध करके उससे रक्षाकी प्रार्थना की गई है। "यस्मान्नजातः" इस मन्त्रमें ईश्वरको व्यापक मूर्तिमान बतलाकर ईश्वरसे उत्कृष्ट कोई भी नहीं दिखलाया है। जब तीनों ही प्रतीकके मन्त्रोंमें ईश्वरको मूर्तिमान कह दिया तब ॥ "न तस्य प्रतिमा अस्ति" ॥ इस पूर्वार्द्धसे ईश्वरकी मूर्तिका निषेध पागलके सिवा और कोई भी विद्वान नहीं कर सकता है। पूर्वोक्त प्रकारसे जब मूर्तिपूजा वेदोंसे सिद्ध हो जाती है तो आज-कलके दलीलबाज लोग मूर्तिपूजाको उड़ा देनेके लिये ग्यारह प्रश्न करते हैं। तिसमें पहला प्रश्न यह है कि। क्या मूर्तिमें ईश्वर धस बैठा है जो मूर्तिमें ईश्वरका पूजन करते हो। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि क्या फोटोमें फोटो वाले मनुष्य धस बैठते हैं और क्या नोटमें रुपये धसे हुए हैं। अव्यापक होनेपर भी जैसे संसार फोटो और नोटको प्रतिकृति मानता है वैसे ही ईश्वरकी प्रतिकृति मूर्ति है इससे हम सब मूर्तिपूजा करते हैं। एक मूर्ति हीं में नहीं बल्कि सब संसारमें ईश्वर व्यापक है। इस प्रकार पहले प्रश्नका उत्तर होनेपर तो दूसरा प्रश्न होता है कि ॥ मूर्ति तो मनुष्यकी बनाई है। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि जिस मनुष्यकी बनाई स्याही और मनुष्यका बनाया कागज तथा मनुष्यका टाईप इन सबोंसे बना हुआ जो वेद कुरानशरीफ बाईबिल जिन्दा-वस्था गुरुग्रन्थ साहब ये सब जिन मनुष्योंके धर्म-ग्रन्थ हैं उन सबकी इनमें पूज्य बुद्धि है। वैसे ही मनुष्यकी बनाई मूर्तिमें भी मूर्ति पूजकोंकी पूज्य बुद्धि

वश करने योग्य (च) और (विषयान्तरेषु) भगवद्विषयसे अन्य शब्दरूप रस गन्ध स्पर्श विषयोंमें (निमज्य) मग्न होकर (विमुखानाम्) भगवान्से विमुख होनेवाले (चेतनानाम् , जीवोंकी (वैमुख्यम्) विमुखताको (दूरीकृत्य) दूर करके (रुचिम्) भगद्विषयकी रुचिको (उत्पादयति) उत्पन्न करते हैं और (रुच्युत्पत्तौ) भगवद्विषयकी रुचि उत्पन्न होनेपर (उपायः) भगवत्प्राप्तिके लिये उपाय (भवति) होते हैं और अर्चावतारको (उपायपरिग्रहे) उपायत्वेन स्वीकार (कृते) करने पर वे ही अर्चावतार (भोग्यः) भोग्यचेतनके भोग करने योग्य (भवति) होते हैं ॥ ४७ ॥

अब श्रीवचनभूषणकार यह कहते हैं कि प्रपत्ति करनेवाले अधिकारी तीन हैं।

मू०-॥ अत्र प्रपत्तिकर्तारोऽधिकारिणस्त्रयः ॥

सूत्र ४८॥

अर्थ—(अत्र) इस अर्चावतारस्थलमें (प्रपत्तिकर्तारः) भगवतकी प्रपत्ति करनेवाले (अधिकारिणः) अधिकारी (त्रयः) तीन हैं। इसीसे कहते हैं ॥ कि अर्चावतारमें प्रपत्ति करनेवाले अधिकारी तीन हैं ॥ ४८ ॥

अब जगदाचार्य जी यह कहते हैं कि अधिकारी तीन कौन कौन हैं।

मूल॥ अज्ञाश्च ज्ञानाधिकाश्च भक्तिपरवशाश्च ॥

सूत्र ४९॥

अर्थ—(अज्ञाः) भगवत्प्राप्तिके लिये साधनानुष्ठानके उपयुक्त ज्ञानसे रहित अज्ञजन (च) और (ज्ञानाधिकाः) कर्मादि अनुष्ठानको करनेके लिये ज्ञान और शक्ति होने पर भी भगवदत्यन्त परतंत्रभूत अपने स्वरूपको यथार्थ देखनेसे उपायान्तर स्वरूप विरुद्ध हैं ऐसा समझ छोड़नेके उपयुक्त ज्ञानपूर्तिवाले ज्ञानाधिक जन (च) और (भक्तिपरवशाः) किसी एक भी उपायको अनुष्ठान करनेमें असक्त भगवत्प्रेमातिशयसे शिथिल होनेवाले भक्ति परवश जन ये तीन प्रपत्ति करनेवाले अधिकारी हैं। इसीसे कहते हैं कि ॥ अज्ञ ज्ञानाधिक और भक्तिपरवश ये तीन प्रकारके अधिकारी हैं ॥ ४९ ॥

अब प्रबन्धकर्ता यह कहते हैं कि अज्ञानादिकोंके द्वारा प्रपत्ति करनेवाले कौन कौन हैं।

मूल-॥ भक्ताववस्थाभेदोत्पत्ताविदं नष्टा भवति ॥

सूत्र ५८॥

अर्थ—(भक्तौ) भक्तिके विषयमें (अवस्थाभेदोत्पत्तौ) अवस्थाके भेद उत्पन्न होनेपर (इयम्) यह भगवत्की प्रपत्ति (नष्टा) नष्ट (भवति) हो जाती हैं। इसीसे कहते हैं कि ॥ भक्तिके अवस्था भेद होनेपर यह प्रपत्ति नष्ट हो जाती हैं ॥५८ ॥

अब प्रबन्धकर्ता इस प्रकारकी प्रपत्तिकी निष्ठाको नाश करनेवाली भक्तिके अवस्था भेदको कहते हैं कि।

मूल ॥ स्वमलंकारयति धारयति च ॥ सूत्र ५९॥

अर्थ—भक्तिका अवस्थाभेद (स्वयम्) अपनेको (अलंकारयति) अलंकार-कृत कराता है अर्थात् भगवल्लाभके लिये स्वयत्नमें लगाता है (च) और (धारयति) धारण करता है। इसीसे कहते हैं कि ॥ अपनेको अलंकृत कराता है और धारण कराता है ॥ ५९ ॥

अब श्रीवचनभूषणकार यह कहते हैं कि भक्तिके अवस्थाविशेष केवल भगवद्विषयमें ही नहीं किन्तु भगवत संबन्धी वस्तुओंके विषयमें भी परस्पर विरुद्ध स्वभावको उत्पादन करता है।

मूल॥ एतौ स्वभावविशेषौ कल्याण गुणेष्वपि श्री शरीरेष्वपि श्रीनामस्वपि वेणुनादे च द्रष्टुं योग्यौ

॥सूत्र ६०॥

अर्थ—(एतौ) ये दोनों (स्वभाव विशेषौ) पूर्वोक्तसे भिन्न स्वभाव विशेष दिव्य सूरियोंको धारकतया और बाधकतया भान होते हैं। वे किस किस स्थलोंमें भान होते हैं इसको कहते हैं कि (कल्यालंगुणेषु) कल्याण गुणोंमें जैसे ॥ गोविन्दगुण गात्वा प्राणं रक्षामि ॥ गोविन्दके गुणगानकर प्राणकी रक्षा करता हूं। यहां पर धारकतया भान होता और ॥ प्रबल पापं मां बाधमान गुणविशिष्ट: ॥ प्रबल पापी मुझको